ब्रिटिश-पूर्व भारतीय समाज की राजकोषीय व्यवस्थाएँ

जी. शिवरामकृष्णन

1 अगस्त 2025

1. क्या अंग्रेजी शासन से पहले पूरे भारत में समाज की राजकोषीय व्यवस्थाओं के बारे में बात की जा सकती है? यह एक खुला सवाल है। संभवत: भारतीय उपमहाद्वीप में राजकोषीय व्यवस्थाओं की विविध प्रणालियाँ थीं। लेकिन ब्रिटिश पर्यवेक्षकों और शासकों की उपलब्ध रपटों से पता चलता है कि भारत के विभिन्न हिस्सों या क्षेत्रों की राजकोषीय व्यवस्थाओं में कुछ सामान्य विशेषताएँ थीं।

2. भारत पर सभी ब्रिटिश रपटों में एक आम धारणा यह थी कि खेती योग्य भूमि का एक तिहाई से लेकर लगभग आधा हिस्सा 'लगान-मुक्त' था। यह बात अंग्रेजों के लिए काफी हैरानी की तो थी ही जिसे स्वीकार करने के लिए वे कतई तैयार नहीं थे। इसका कारण यह था कि अंग्रेज यहाँ भी उसी प्रथा के मुताबिक लगान वसूलना चाहते थे, जो ब्रिटेन में नॉर्मन विजय (1100 ई.) के बाद से ही रूढ़ थी जिसमें कोई भी जमीन लगान-मुक्त नहीं थी। इसीलिए अंग्रेज अधिकारियों ने बंगाल और मद्रास प्रेसिडेंसी में लगान-मुक्त जमीनों की व्यापक जाँच कराई।

3. जाँच के दौरान अंग्रेजों को बताया गया कि ये लगान-मुक्त जमीनें उन व्यक्तियों या परिवारों को दी जाती थीं, जो स्थानीय स्तर पर विविध आवश्यक कार्य या सेवाएँ करते थे। ऐसे सेवा-कर्मी इन जमीनों पर खेती करने वाले किसानों से उपज का लगान के बराबर का हिस्सा पाते थे। यानी उन जमीनों पर खेती की उपज का जो हिस्सा लगान के रूप में शासक या सरकार को जाता, वही हिस्सा अब सीधे सेवा-कर्मी को जाता था।

4. इस तरह, राजा या सरकार के हिस्से के लगान का एक बड़ा हिस्सा 'मन्यम' के रूप में स्थानीय स्तर पर ही वितरित हो जाता था। अतः अनुमानित राजस्व का केवल 50 या 60 प्रतिशत हिस्सा ही शासक के केंद्रीय कोष में पहुँचता था। ऐसी व्यवस्था का स्वीकार अंग्रेजों के लिए असंभव था। इसलिए उन्होंने इन लगान-मुक्त जमीनों को कम करने की कई तरकीबें खोजीं। अंग्रेजों द्वारा इन 'इनाम' या 'मन्यम' को घटाने और रद्द करने की षड्यंत्रों की अपनी एक दिलचस्प कहानी है! सौ वर्षों में उन्होंने ने ऐसी लगान-मुक्त या कर-मुक्त जमीनों का परिमाण लगभग शून्य पर लाकर रख दिया।

5. अंग्रेजों ने बड़े नियोजित तरीकों से ज़मींदार और रयतवारी व्यवस्थाओं को स्थापित करना आरम्भ किया। इससे पहले कि बंगाल और मद्रास प्रेसिडेंसियों में इन्हें लाया जाय, उन्होंने देश भर में भारतीय प्रथाओं की जाँच-पड़ताल की। पूरे देश में लोग उन्हें यही बताते रहे कि सामान्य तौर पर शासक, उपज का छठा हिस्सा टैक्स/लगान के रूप में लेते हैं। यह भी कि यही बात धर्मशास्त्रों में उचित या न्यायसंगत मानी गई है। गांधी-विचार के अभ्यासक

धरमपाल के अनुसार यह जानकारी प्रारंभिक ब्रिटिश गवर्नरों - हेस्टिंग्स, मुनरो आदि - के लिए बड़ी निराशाजनक थी। उन्हें उस भारतीय परंपरा की खोज थी जिसमें जमीन पर अधिक लगान वसूला जाता हो। अंततः, उन्हें पता लगा कि अलाउद्दीन खिलजी ने उपज का एक-चौथाई या अधिक हिस्सा वसूला था। बस इसी को आधार बनाकर उन्होंने भारत में अधिक कर वसूलना उचित समझा। धरमपाल के अनुसार, अंग्रेजों ने अगले पाँच-छह दशकों में धीरे-धीरे अधिकांश भारत में उपज का लगभग आधा हिस्सा लगान के रूप में ऐंठना शुरू किया। यह ब्रिटेन में लागू व्यवस्था से भी कम था, जहाँ 70-80% उपज कर के रूप में ली जाती थी। धरमपाल यह भी स्पष्ट करते हैं कि भारतीय लगान व्यवस्थाएं दक्षिण एशिया के अधिकतर हिस्सों में प्राचीन थीं। जेम्स स्कॉट की पुस्तक "मॉरल इकोनॉमी ऑफ द पीज़ेंट" भी इस बात का समर्थन करती है।

6. धरमपाल का तर्क है कि 'इनाम', 'मन्यम' जैसी प्रणालियाँ, जिनके द्वारा टैक्स स्थानीय स्तर पर ही व्यय होता था, शायद प्राचीन सभ्यतागत प्रथा थी, जिसमें शासक की भूमिका बहुत कम थी। यानी शासक कोई भी हो, ये व्यवस्थाएँ सदियों तक चलीं। इसलिए मुग़ल शासन में भी ये प्रथाएँ जारी रहीं। उदाहरण के लिए, कहा जाता है कि टीपू सुल्तान ने भी श्रृंगेरी मठ और श्रीरंगपट्टनम के मंदिर को कई 'मन्यम' दिए। जब ब्रिटिशों ने बंगाल के सभी इनामदारों से अपने इनाम जारी रखने के लिए आवेदन माँगे, तो सैकड़ों आवेदकों में अधिकतर हिंदू इनामदार थे। धरमपाल बताते हैं कि अंग्रेजों द्वारा कब्जे से पहले बंगाल लंबे समय तक मुस्लिम शासन में रहा था, फिर भी हिंदू इनामदार बने रहे। मुस्लिम शासकों ने भी हिंदू मंदिरों, धर्मशालाओं, विद्यालयों, सांस्कृतिक संस्थाओं के इनाम, मन्यम, अनुदान को रद्द नहीं किया। कुल मिलाकर, ये व्यवस्थाएँ भारत की दीर्घकालीन सभ्यता का हिस्सा थीं, जिन्हें कोई शासक, हिंदू या मुस्लिम, बिना वजह समाप्त नहीं कर सकता था। हाँ, शासक चाहें तो नए इनाम जोड़ सकते थे या कभी-कभी कुछ को रद्द भी कर सकते थे, मगर यह उनकी मर्ज़ी नहीं बल्कि परंपरा पर आधारित था।

7. इस प्रकार, अंग्रेजों को पूरे भारत में उत्तर से दक्षिण, पूरब से पश्चिम तक जिस व्यवस्था को कार्यरत पाया, उनको एक राजकोषीय व्यवस्था या कल्याणकारी कार्यप्रणाली कहा जा सकता है। 18वीं शताब्दी के ब्रिटिश शासकों को ये भारतीय प्रथाएँ अजीब और अस्वीकार्य ही लग सकती थीं। सन् 1800 के बाद, अंग्रेजों ने इन व्यवस्थाओं को वही हथखंडे अपनाते हुए औपचारिक रूप से तोड़ना शुरू कर दिया जो उन्होंने अपने देश में नार्मन विजय के बाद से अपनाए थे। जैसा कि धरमपाल लिखते हैं, यह अंग्रेजों ने उन सारे प्रदेशों में किया जिनमे उनकी हुकूमत कायम हुई।

8. अंग्रेजों को इस बात पर भी आश्चर्य हुआ कि अधिकांश भारत में किसानों को भूमि से बेदखल नहीं किया जाता था। भूमि बिकने पर भी किसान निकालें नहीं जाते थे, या फिर जमीन के साथ ही "बेच" दिए जाते थे। कुछ विद्वानों ने इसे "कृषि दासता" (agrestic slavery) कहा है, जो कि ब्रिटेन-यूरोप के पारम्परिक सामंतवाद सरीखी थी।

हालाँकि, औपनिवेशिक इतिहासकार 19वीं सदी के भारत में कृषि दासता के उदाहरण तो देते हैं, परंतु यह बिलकुल स्पष्ट नहीं है कि निजी जमीन-स्वामित्व जैसा कुछ ब्रिटिश-पूर्व भारत में था भी या नहीं।

9. 18वीं सदी की ब्रिटिश रिपोर्टों से यह पता लगता है कि किसी भी जमीन पर खुद खेती करते किसानों के अलावा समुदाय के कई अन्य व्यक्तियों और सेवा-कर्मियों का भी उस जमीन कि उपज पर अधिकार था, और यह भी कि इसे समाप्त करना सरल नहीं था। ये अधिकार परंपरागत थे, जिसे जमीन के मालिक भी मानते थे। भारत के सभी इलाकों में फसल कटाई के बाद उपज के बँटवारे के स्पष्ट नियम थे। फसल कटाई के बाद गहाई से पहले प्रथम कौन-सी सेवा का कितना हक़ बनता है, गहाई बाद में किसको कितना मिलेगा, आदि, हर गाँव में सब जानते थे।

10. धरमपाल द्वारा उजागर किए गए 1760 के दशक के चेंगलपट्टू जिले के अभिलेखीय आँकड़ों से पता चलता है कि उपज का आवंटन केवल गाँव या खेती में प्रत्यक्ष श्रम देने वालों तक सीमित नहीं था, बल्कि बाहर तक जाता था। इन अभिलेखों में 2000 से अधिक गाँवों की जानकारी है। ये आंकड़े ब्रिटिश अभियंता थॉमस बर्नार्ड द्वारा तत्कालीन नवाब आर्काट द्वारा ईस्ट इंडिया कंपनी को 'जागीर' दिए गए के पूरे जिले के सर्वेक्षण का नतीजा थे। इन गावों में कार्यरत राजकोषीय व्यवस्था के ये रिकॉर्ड अत्यंत विस्तृत हैं। चेंगलपट्टू के आँकड़ों से पता चलता है कि वहाँ एक जटिल, आधुनिक कल्याणकारी राज्य जैसी व्यवस्था थी, फर्क बस इतना था कि जमीन या अन्य राजस्व आज कि तरह किसी केंद्रीय कोष में नहीं जाता था, बल्कि स्थानीय स्तर पर बँट जाया करता था। केंद्रीय सत्ता की इसमें कोई भूमिका नहीं थी, और किसी नियम के उल्लंघन से उत्पन्न स्थिति को स्थानीय स्तर ही सुलझा लिया जाता था । इतना ही नहीं, सुलह के तरीके भी स्थानीय स्तर पर ही इजाद किये हुए थे। यहाँ तक कि के मुग़ल शासन के केन्द्रीकरण से भी इन व्यवस्थाओं में कोई बड़ा बदलाव नहीं आया।

11. धरमपाल को औरंगज़ेब का एक पत्र मिला, जो उसने अपने दक्खन अभियान पर निकले पोते को लिख भेजा था। पत्र में उल्लेख था कि जहाँगीर और शाहजहाँ के कोष में आमदनी इतनी कम थी कि दोनों ने खर्च चुकाने के लिए अपने गहने बेच दिए। औरंगज़ेब ने लिखा कि मेरे साथ ऐसी स्थिति नहीं होनी चाहिए, इसलिए आमदनी बढ़ाने और खर्च घटाने की सलाह दी। यहाँ रोचक बात यह है कि मुगल साम्राज्य की आमदनी का अनुमान जहाँ आधुनिक इतिहासकार 100 करोड़ रुपये लगाते हैं, वहीं औरंगज़ेब के पत्र में एक करोड़ से कुछ अधिक की बात है। धरमपाल के अनुसार, अनुमानित राजस्व केवल काल्पनिक होता था, वास्तविक वसूली बहुत कम थी, बहुत-सा राजस्व स्थानीय स्तर पर प्रथाओं के अनुसार खर्च हो जाता था। इसीलिए केंद्रीय कोष में केवल एक छोटे हिस्से की आमदनी पहुँचती थी।

12. अंग्रेजी शासन वास्तव में हिंसा और जोर-जबरदस्ती के बल पर भारत की राजकोषीय व्यवस्थाओं की तोड़फोड़ हि थी। जैसे-जैसे ब्रिटिशों ने स्वदेशी व्यवस्थाएँ खत्म कीं, वैसे-वैसे पूरा देश में विपन्नता और तकलीफों में गिरता गया।

कुछ और विचार

4 अगस्त 2025

धरमपाल ने अठारहवीं सदी के मोड़ पर भारतीय समाज के गहन अध्ययन को अपना जीवन समर्पित कर दिया। मेरी 1 अगस्त की पिछली टिप्पणी लगभग उन्हीं के महत्वपूर्ण शोध-कार्य पर आधारित थी। उस शोध से औपनिवेशीकरण से पहले भारतीय समाज की बहुत उज्ज्वल तस्वीर प्रस्तुत होती है। धरमपाल के अनुसार, किसी भी पूर्व आक्रमण की तुलना में भारत पर ब्रिटिश शासन के परिणाम कहीं अधिक निर्णायक और दूरगामी थे। वे मानते थे कि भारत पर बार-बार विदेशी आक्रमण और 'मुस्लिम शासन' का असर उतना विशाल नहीं था, जितना आम तौर पर समझा जाता है। दक्षिण भारत तो लगभग हमेशा ही मुस्लिम शासन से बाहर था। उन्होंने यह भी कहा कि मुस्लिम शासन ने ग्रामीण-आर्थिक गतिविधियों या उत्पादन संबंधों में कोई उल्लेखनीय दखल नहीं किया। इसके विपरीत, ब्रिटिश शासन ही सच्चे अर्थों में 'विदेशी' शासन था। धरमपाल की सोच में पूरे भारत पर ब्रिटिश कब्जे में लगभग एक सदी लगी, और विरोध 1857 के बाद ही खत्म हो पाया; उसके बाद, 1915 में महात्मा गांधी के आने तक, भारत के समाज और आत्मा का मनोबल बहुत कम दिखता है। खैर, वह जो भी हो।

हाल के 100 वर्षों के ज़मींदारी संबंधों और भूमिहीनता के शोध से, चेंगलपट्टू के डेटा में दिखायी जो पूर्व-ब्रिटिश व्यवस्थाएँ हैं, वे कई सवाल खड़े करती हैं। इनमें से एक सवाल है, 1834 से आरम्भ हुई बंधुआ मज़दूरी की ब्रिटिश नीति, जिसके तहत दक्षिण भारत के लाखों लोग मॉरीशस, फिजी, सीलोन आदि भेजे गए। क्या यह बात 'सभी वर्गों में उपज के बँटवारे' और गाँव में 'सर्वजन-कल्याण' की व्यवस्था से मेल खाती है? साथ ही, ऐसी निम्न जातियाँ, जिन्हें 'बहिष्कृत' गया, और जो आज भी गाँवों में अपेक्षाकृत पिछड़ी रहती हैं, क्या पाँच-छह दशकों में इतनी पिछड़ी बन गईं? यदि 1915 में दक्षिण अफ्रीका से लौटे गांधीजी ने गाँवों में गरीबी और मानव-गरिमा का अभाव देखा, तो क्या यह सदीभर के ब्रिटिश शासन से ही हुआ, या समाज में कुछ हमेशा से ही रहा? धरमपाल कई ब्रिटिश रिपोर्टों का हवाला देते हैं कि तथाकथित 'अछूत' भी खेतिहर, वस्त्रकार और वीर सैनिक (जैसे महाराष्ट्र के महार) रहे हैं, परंतु साथ ही साक्ष्य हैं कि 20% ग्रामीण जनसंख्या जमीन से वंचित और मजदूर वर्ग की थी - मुख्यतः आज की अनुसूचित जातियाँ।

1760 के आसपास चेंगलपट्टू की व्यवस्था बहुत सुव्यवस्थित दिखती है, पर 1830 के दशक में इन्हीं क्षेत्रों (दक्षिण एवं उत्तर आर्कोट और तमिलनाडु के दक्षिणी ज़िले) से भारी संख्या में मजदूर बंधुआ बना दिए गए - इसे समझ पाना कठिन है। धरमपाल का मत था कि ब्रिटिश नीति इतनी सख्त थी कि कुछ दशकों में बड़े वर्गों की जमीन छिन गई, अकाल की वजह से लोग इधर-उधर पलायन करने लगे, और अंततः बंधुआ मज़दूर बनकर सीलोन, मलाया आदि पहुँचे। ब्रिटिशों द्वारा बड़े स्तर पर चाय, कॉफी, रबर के बागान स्थापित करने से बंधुआ मज़दूरी को बढ़ावा मिला। चूँकि 1830 के आसपास ब्रिटेन ने दासता समाप्त कर दी थी, अतः तर्क है कि ब्रिटिश उपनिवेशों से बंधुआ मज़दूरी की प्रवृत्ति इसी वजह से बढ़ाई गई।